International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

कामायनी की भाव–धर्मिता

डॉ० किरण कुमारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय,राँची

सारांश:–

छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद ने कविता को द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से मुक्त कर कल्पना, अनुभूति, प्रणय तथा प्रकृति का आनंद लेने के लिए छोड़ दिया। प्रसाद की अन्तिम कृति 'कामायनी' है जो छायावाद–युग की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है। 'कामायनी' का प्रत्येक सर्ग मानव की वृत्तियों पर आधारित है। इन वृत्तियों का बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। इस भाव–निरूपण में मूर्तिमत्ता का समावेश भाव को साकार करके उसके प्रभाव को द्विगुणित कर देता है।

बीज शब्द: छायावाद, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, रहस्यवाद, सम–सामयिक स्थिति, मानवीय भावना, श्रद्धा, लज्जा, भाव–चित्र।

पूर्व अवधारणा :–

छायावाद के पुरोधा जयशंकर प्रसाद गहन मन और गंभीर मानवीय अनुभूतियों के कवि हैं। उनकी काव्य–यात्रा विन्दु से सिन्धु की, व्यष्टि से समष्टि की, काशी से कैलास की यात्रा है। उनकी प्रतिभा प्रेम की काशी से चलकर शिव के कैलास–शिखर पर आरोहण करती है और वहीं समरसता के आनन्द में लीन हो जाती है। आधुनिक हिन्दी काव्य पर उनकी अमिट छाप है। समय ने सिद्ध कर दिया है कि प्रसाद 'मानवता के महाकाव्य' हैं। कामायनी की कथा जलप्लावन से आरम्भ होकर आनन्द की स्थिति में पूरी होती है। देव सृष्टि का समस्त भोग विलास एक स्वप्न की भाँति विलीन हो गया। यह महाकाव्य पंद्रह सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग अपने नाम के अनुसार औचित्यपूर्ण तथा सार्थक भी है। हर सर्ग का नामकरण उसमें वर्णित घटनाओं के आधार पर किया गया है।

प्रस्तावना :–

कामायनी महाकाव्य हिन्दी साहित्य का गौरवग्रन्थ माना गया है। यह रहस्यवाद का प्रथम महाकाव्य है। कामायनी का प्रकाशन वर्ष 1935 ई0 माना गया है। इसमें कुल 15 सर्ग हैं–चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य तथा आनन्द। 'कामायनी' के विचार का अन्तर्संगठन कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है। चेतना के जिस विराट फलक पर 'कामायनी' प्रतिष्ठित की गई है, उससे वह कहीं हटने नहीं पायी है।

अध्ययन का महत्त्व :–

'कामायनी' केवल मनु आदि के व्यक्ति–जीवन की ऐतिहासिक कथा ही नहीं, इन पात्रों की सांकेतिक व्यंजनाएँ भी उसमें हैं, जिन्हें स्वयं कवि ने 'कामायनी' की भूमिका में स्वीकार किया है;

–''यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।''[1] कवि की इस उक्ति के आधार पर 'कामायनी' के रूपक–तत्व के विशद विवेचन का प्रयास भी किया जाता है किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि प्रसाद ने 'रूपक' शब्द का प्रयोग 'इतिहास' के सन्दर्भ में किया है 'कामायनी' के संदर्भ में नहीं। 'कामायनी' के संदर्भ में तो कवि ने मनु आदि पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को ही प्रधान माना है–हाँ उनके सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में उन्हें 'कोई आपत्ति नहीं' इस दृष्टि से 'कामायनी' की समग्रता में ही समासोक्ति का विधान लक्षित होता है।

अध्ययन का उद्देश्य :–

देवों के उन्मुक्त भोग विलास से विक्षुब्ध विराट सत्ता की प्रेरणा से होने वाली विध्वंस लीला को देखकर मनु चिंतित हैं। इसके बाद निराश मनु के हृदय में आशा का संचार, उनका गंधर्व कुमारी श्रद्धा से सम्मिलन, श्रद्धा का आत्म–समर्पण, श्रद्धा का मनु को कर्म की प्रेरणा देना, दोनों का कुछ समय तक साथ रहना, मनु द्वारा श्रद्धा का परित्याग एवं सारस्वत प्रदेश में मनु की इड़ा से भेंट एवं सारस्वत नगर की पुनर्स्थापना, मनु का इड़ा से अनैतिक संबंध स्थापित करने का प्रयत्न, परिणामस्वरूप जनसंघर्ष और मनु का मूर्छित होना आदि प्रसंग आते हैं। फिर श्रद्धा का स्वप्न देखकर मनु की खोज में निकलना और समझाना, मनु का पुनः श्रद्धा का त्याग कर सारस्वत प्रदेश से चले जाना, श्रद्धा का उनकी खोज में जाना तथा उनके द्वारा कैलाश पर पहुँचकर शिव दर्शन कर बुद्धि से मुक्त होकर सामरस्य की दशा में अखण्ड आनन्द की प्राप्ति आदि घटनाओं से 'कामायनी' का कथानक गूंथा गया है। 'कामायनी' कथा प्रधान महाकाव्य नहीं है।

रचनाकार की समसामयिक स्थिति से हमें अपरिचित नहीं रहना चाहिए। प्रसादजी मुख्यतः साम्य, सरव्य और स्वातन्त्र्य (Equality fraternity and Liberty) के कल्पनाशील आदर्शवाद से अनुप्रेरित थे। फिर भी उन्होंने एक भविष्यद्रष्टा की भाँति आगामी वर्ग–संघर्ष का आभास दिया है। उन्होंने एक कल्पनाप्रवण, सहानुभूतिशील और अग्रगामी मध्य वर्ग के चित्रण से आरम्भ कर श्रमिक दम्पति चरित्र निर्माण तक अपना कथानक साहित्य पहुँचा दिया है। 'कामायनी' काव्य में उन्होंने एकांगी भौतिक प्रगति और संघर्ष का विरोध अवश्य किया है, किन्तु प्रसाद कम्युनिस्ट उपचारों को कट्टरपन के साथ ग्रहण नहीं करते, किन्तु अपने युग की प्रगति में वे पिछड़े हुए नहीं थे।

परिकल्पना :–

''प्रसाद जी मनुष्यों के और मानवीय भावनाओं के कवि हैं। शेष प्रकृति यदि उनके लिए चैतन्य है तो भी मनुष्य के सानिध्य में है। वह विकास भूमि यदि संकीर्ण है तो भी मुनष्यता के प्रति तीव्र आकर्षण से भरी हुई है। आँसू में प्रसाद ने यह निश्चित रीति से प्रकट कर दिया है कि मानुषीय विरह–मिलन के इंगितों पर वे विराट् प्रकृति को भी साज सजाकर नाच नचा सकते हैं। यह शेष प्रकृति पर मनुष्यता की विजय का शंखनाद है। कवि जयशंकर प्रसाद का प्रकर्ष यहीं पर है।''[2] यहीं

प्रसादजी प्रसादजी हैं। 'आँसू' में वे वे हैं। 'झरना' में एक विचित्र अवसाद, जो नवीन बौद्धिक अन्वेषणों और तज्जन्य संशयों का परिणाम जान पड़ता है, बहुत ही स्पष्ट है। यह प्रसादजी के मानसिक विकास दृष्टि से परिवर्तन काल की सृष्टि है, किन्तु प्रसाद जी जैसे प्रतिनिधि कवि के लिए जो नवीन प्रयोगों में सामयिक विचार प्रवाहों के नये चक्रों में स्वभावतः व्यस्त रहते थे, यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। प्रश्न यह अवश्य है कि वे नवीन प्रयत्न कौन से हैं जिनका अनिवार्य परिणाम 'झरना' है। मेरे विचार से ये वे प्रयोग हैं, जो प्रसाद जी को क्रमशः आशा और प्रमोद के लोक से हटाकर जीवन की गम्भीर परिस्थितियों का साक्षात्कार करा रहे थे। अवश्य ही यह साक्षात्कार 'झरना' में स्पष्ट नहीं है, केवल भाव–परिवर्तन की झलक भर है, किन्तु कटु वास्तविकता गंभीर जीवनानुभव तथा स्थान–स्थान पर प्रकट होने वाली आलोक–रहित प्रगाढ़ निराशा की वे प्रेरक शक्तियाँ यहीं उत्पन्न हो रही थीं, जिनका परिपाक हम आगे चलकर 'कामायनी' काव्य में देखते हैं। यद्यपि प्रसाद जी में मानवता, उनकी शक्ति और सम्भावना के प्रति इतनी सुदृढ़ आशा थी कि 'कामायनी' में काव्य दुःखान्त होने से बच गया, किन्तु अपने युग की सामाजिक और सांस्कृतिक असाध्यहीनताओं के प्रति प्रसादजी की विरक्ति, क्षोभ और आवर्जना 'कामायनी' में कम परिस्फुट नहीं हुई है। उन्हीं का उद्‌गम–स्रोत हमें झरना में दिखाई देता है।

अपनी मर्म ग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा मानव प्रकृति का विश्लेषण कर प्रसाद जी ने 'कामायनी' काव्य की रचना की है। इसमें मानवीय प्रकृति के मूल मनोभावों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से पहचानकर संग्रह किया गया है। यह मनु और कामायनी की कथा तो है ही, मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास में सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है। यही नहीं, यदि हम और गहरे उतरें तो मानव–प्रकृति के शाश्वत स्वरूप की झलक भी इसमें मिलेगी। आध्यात्मिक और व्यावहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की सर्वप्रथम चेष्टा इस काव्य में की गई है। कोई साधारण योग्यता का कवि इस कार्य में कदापि सफल नहीं हो सकता। इसके लिए मानवीय वस्तुस्थिति में परिचय रखने वाली जिस मर्मभेदिनी प्रकृति की आवश्यकता है, वह प्रसादजी को प्राप्त हुई है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से शरीर, मन और आत्मकर्म, भावना और बुद्धि, क्षर, अक्षर और उत्तम तत्व को सुसंलग्न कर दिया है। यही नहीं, उन्होंने इन तीनों का भेद मिटाकर इन्हें पर्यायवाची भी बना दिया है। जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरूष और नारी भी हैं, यही नहीं शाश्वत पुरूषत्व और कामायनी हैं। एक की साधना ही सबकी साधना बन जाती है। महाराज मनु ने एक बार मानव स्वभाव की कठोर परीक्षा करके 'मनुस्मृति' की रचना की, उसमें उन्होंने ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, इन चार आश्रमों की नियोजना की थी इस आश्रम–संस्था के मूल में जो सुदृढ़ और परीक्षित मनोविज्ञान है, वह समय पाकर विस्मृत हो गया। प्रसाद जी ने उसको काव्यमय रूप में उपस्थित किया है। उसकी और लोगों का ध्यान अवश्य आकर्षित होगा। स्वरूप का बौद्ध, भोग तथा सांख्य आदि शास्त्रों के विश्लेषण से, वैदिक तथा पौराणिक कथाओं की अनुश्रुति पर, मनुस्मृति का सामायिक अनुशीलन, अनुसरण और संशोधन करते हुए, आधुनिक रूचि के अनुकूल नारी की महिमा का विशेष रूप से प्रकाश करने के लिए, उल्लेख किया गया है। मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान यहाँ एक साथ मिलते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यमय निरूपण

हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है। इसलिए मैं इस काव्य का अभिनन्दन गोस्वामी तुलसीदास जी की इन स्मरणीय पंक्तियों से करती हूँ–

अस मानस मानस चख चाहीं।
भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही।।
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।

भारतीय नारी की सम्पूर्ण लज्जा सिमट कर जैसे श्रद्धा में ही केन्द्रीभूत हो गयी है इसीलिए अपरिचित मनु से नतशिर ही प्रश्न करती है। कमल झुक कर भी अपना अपरिमेय परिमल नहीं खो देता। श्रद्धा के मुख से सौरभ बरबस ही विकीर्ण हो उठा है। आदि कवि के प्रथम छन्द की प्रेरणा करूणा थी। मा निषाद, प्रतिष्ठां त्वगमः शाश्वतीः समाः की नैसर्गिक अभिव्यक्ति क्रौंच–वध से अनुप्राणित थी। कवि का कंठ करूणा ने खोला था। श्रद्धा भी निर्जन के उस तपस्वी पर द्रवीभूत हो उठी। उसकी दया ने ही एक अपरिचत के सम्मुख उसका मधुर स्वर खोल दिया। श्रद्धा के प्रथम छंद की करूणा किसी प्रकार आदि कवि की आदि कविता से कम न थी।[3] ऐसी श्रद्धा के मन में लज्जा का प्रवेश होता है, यहाँ लज्जा की तस्वीर विभिन्न कोणों से खींचा है। लज्जा मानवी बनकर किस प्रकार सामने आती है।

कोमल किसलय के अंचल में छिपी नव कली जैसे और भी आकर्षक दिखती है, गोधूलि के धूमिल पट में दीपक की लौ जैसे और भी प्रकाशवान दिखायी देती है, वैसे ही लज्जा अधिक कमनीय होकर अधरों पर उँगली रखे तथा आँखों में सरसता का भाव भरे, नीरव निशीथ में अपनी कोमल भुजाएँ फैलाये, आलिंगन की चाह में बढ़ी आ रही है।[4] श्रद्धा के मन में प्रथम बार जब लज्जा का प्रादुर्भाव हुआ उस समय उसका मन संकल्प–विकल्प से भर गया। अधरों पर उँगली रखना स्त्रियों की एक मुद्रा है जो बड़ी प्यारी लगती है। वासना की प्रेरणा से जब नारी पुरूष को आत्मसमर्पण करना चाहती है तब उसके अन्तर की स्वाभाविक लज्जा उसे एक बार टोकती है और बिना बोले ओठों पर उँगली रख कर वर्जन भी किया जाता है। उसी भावार्थ में अधरों पर ऊँगली धरे हुए आया है। श्रद्धा जैसे ही अपने शरीर को सौंपना चाहती है वैसे ही लज्जा टोकती है।[5] लज्जा के उदय से नारी की मुख–मुद्रा देखिये, न जाने सुहाग कण और राग भरे किन अद्भुत पुष्पों को लेकर तुम सिर नीचा किये एक माला गूँथ रही हो। यहाँ सिर झुकाये माला गूँथती हुई किसी रमणी का मधुमय रूप साकार हो उठा है।[6] जैसे कदम्ब–माला का एक–एक पुष्प रोमांच पैदा कर देता है उसी प्रकार लज्जा एक के बाद दूसरा भाव उत्पन्न कर देती है। जैसे फलों के बोझ से डाली झुक जाती है उसी प्रकार लज्जा के बोझ से मन दब जाता है।[7] खिलखिला कर नारी हँसना चाहती है किन्तु लज्जा के भार से अट्टहास मुस्कान में बदल जाता है और नयनों में एक विचित्र नशा चढ़ जाने पर यथार्थ भी सपना मालूम होता है।[8]

''छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रूकती हैं।
संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौहों की काली रेखा–सी भ्रम में पड़ी रही।''[9]

पुरूष के कोमल स्पर्श एवं उपचार से जब अतिथि का चिरन्तन पर दबा हुआ नारीत्व ऊपर उभर आता है और उसमें समर्पण की वाणी सखी सी लज्जा प्रकट होती है।

श्रद्धा उससे पूछती है–अपनी बाँहें फैलाये और आलिंगन का जादू पढ़ती हुई–सी तुम कौन हो, न जाने किन–किन इन्द्रजाल के फूलों से राग भरे हुए सुहाग कण लेकर तुम सिर नीचा किए हुए माला गूँथ रही हो, जिससे मधु की धार बह उठे। तुम अन्तर में खिले हुए कदम्बों की माला सी कोई चीज पहना देती हो, जिससे मन की डाली अपनी फल भरता के डर से झुक जाती है।

नीली किरणों से बुना हुआ सुरभि में सना वह हलका सा आँचल तुम वरदान के समान मुझ पर डाल रही हो। तुम्हारे कारण मेरे सारे अंग मोम के हो जाते हैं। कोमल होकर मैं बल खा रही हूँ और अपने में ही सिमट सी रही हूँ। तुम्हारे कारण तरल हँसी केवल एक मुसकुराहट बन जाती है । नयनों में एक बाँकपन आ जाता है और जो कुछ सामने देखती हूँ वह सब भी सपना हुआ जाता है।

आज जब मेरे सपने में सुख और कलरव का संसार पैदा हो रहा है और अनुराग की वायु पर तैरता इतराता–सा डोल रहा है, जब अभिलाषा अपने यौवन में उस मुख के स्वागत को उठती है और दूर से आये हुए को जीवन भर के बल वैभव का उपहार देकर उसका सत्कार करना चाहती है, तब तुमने यह कह दिया? इस समय यह छूने में हिचक क्यों है?

देखने में पहले आँखों पर क्यों झुक पड़ी है? कलरव परिहास की गूंज होठों तक आकर रूक जाती है। मेरे हृदय की परवशता! तुम कौन हो जो मेरी स्वतंत्रता छीन रही हो? और जीवन वन में खिलते स्वच्छन्द पुष्पों को चुनती जा रही हो?''

तब श्रद्धा रूपी नारी के प्रश्नों का छायारूपी प्रतिमा लज्जा ने यों उत्तर दिया–बाले! इतना मत चौंक, अपने मन का उपचार कर। मैं एक पकड़ हूँ, जो कहती है कि ठहर और सोच विचार ले। मैं गौरव की महिमा सिखलाती हूँ और जो ठोकर लगने वाली है, उसे धीरे से समझाती हूँ, मैं देव सृष्टि की रति हूँ जो अपने पति कामदेव के वियोग के कारण अतृप्ति–सी दीन हो रही हूँ। मैं उसी रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ। मैं मतवाली हो रही सुन्दरता के पग में नुपुर सी लिपटकर उसे मनाती हूँ, और शालीनता सिखाती हूँ, मैं सरल कपोलों की लाली बन जाती हूँ, और आँखों में अंजन सी लगती हूँ। मैं सौंदर्य के चंचल कैशोर्य की रखवाली करती हूँ। श्रद्धा पुनः लज्जा से पूछती है कि, मेरे जीवन का रास्ता क्या है? मुझमें विश्वास–रूपी वृक्ष की छाया में सर्वस्व समर्पण करके चुपचाप पड़ी रहने की ममता क्यों जाग्रत होती है। मैं भाव की इस गहराई में निस्संबल होकर तिर रही हूँ और इन स्वप्नों से जागना नहीं चाहती। मैं क्या करूँ? इस अर्पण में केवल उत्सर्ग का भाव है। मैं दे दूँ और

फिर कुछ न लूँ? लज्जा, कहती है–तुम तो अपने सोने–से सपने पहले ही दान कर चुकी हो। अब तुमको आँसू से भीगे आँचल पर यह संधिपत्र लिखना होगा –

''नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में

पियूष–स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।''[10]

पहले उद्धरण में ब्रीड़ा का कितना भावपूर्ण चित्रण हुआ है। नारी जब पुरूष पर आकर्षित होकर उसे आत्मसमर्पण करना चाहती है तो प्रथम बार ऐसा करने में उसे संकोच होता है। समर्पण की चाह उसे समेटनी पड़ती है। प्रिय का स्पर्श करने में हिचकती है, देखने में पलकें, लज्जा के भार से झुक जाती हैं। इस छन्द में छूने में हिचक, पलकों का झुकना, मन की बातें न कहना ये सब लज्जा के लक्षण हैं। इसी मानवीय चित्तवृत्ति का कलात्मक चित्रण प्रसादजी ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है।

दूसरे उद्धरण में नारी के सात्विक अनुभावों के माध्यम से वासना सजीव कर दी गयी है। मनु को स्पर्श करने की इच्छा मात्र से श्रद्धा के शरीर के रोम–रोम खड़े हो जाते हैं। फिर भी नारी लज्जा के कारण अपनी इच्छा को क्रियान्वित नहीं कर सकती, किन्तु आँखों के बंकिम कटाक्ष से वह मनु को समझा देना चाहती है कि अधरों का मधुर प्रकम्पन, नयनों का मूक निमन्त्रण कोई क्या समझे कोई क्या जाने? यदि तुम उसका अर्थ समझते हो तो समझ जाओ, नारी की लज्जा उसके अधिकारों और इच्छाओं पर मेंड़ बाँध देती है–

(क) मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ।

(ख) लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती,

कुंचित अलकों–सी धुँधराली मन की मरोर बन कर जगती।

(ग) चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,

मैं वह हलकी–सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।

उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में लज्जा स्वयं अपने रूप और गुण का परिचय देती है। लज्जा कहती है कि मैं रति की प्रतिमा हूँ, नारियों को मैं विनम्रता की दीक्षा देती हूँ (लज्जा का संचार हृदय में होते ही नारियाँ फलों से लदी डाली–सी झुक जाती है) पैर में बँधे घुँघरू जिस प्रकार नर्तकी की गति में नियंत्रण ला देते हैं उसी प्रकार यौवन की मादकता से उन्मत्त नारियों में लज्जा आ जाने पर उनमें संयम और अनुशासन आ जाता है।

दूसरे उद्धरण में यह संकेत दिया गया है कि लज्जा के आ जाने पर नारी का बाह्य रूप कैसा हो जाता है। लज्जा से सुन्दरियों के सरल कपोल लाल हो जाते हैं, उनकी आँखें अंजन रहित होने पर भी लज्जा की अनुभूति से ऐसा प्रतीत होता है जैसे आँखें कजरारी हो गयी हैं। बलखाती हुई घुँघराली अलकों के सदृश सुन्दरियों के मन में एक मरोड़ उत्पन्न कर देती है।

तीसरे उद्धरण में लज्जा का स्वरूप और उसके क्रिया–कलाप का विश्लेषण किया गया है। सुन्दर किशोरियों के मन को नियन्त्रण में रखने का काम लज्जा का है। यदि लज्जा का आवरण–रमणीय के नेत्रों के सम्मुख से उठा लिया जाय तो सम्यक अधिक दिन तक अपने यौवन की, अपने सौंदर्य की रक्षा करने में वे असमर्थ हो जाएँ। इस प्रकार लज्जा नारी के सौंदर्य के लिए कवच है। लज्जा का अनुशासन मानकर चलने वाली सुन्दरी का मन भीतर ही भीतर यद्यपि थोड़ा क्षुब्ध रहता है, किन्तु सौंदर्य के अक्षय कोष की सुरक्षा से उनका सौंदर्य निखर पड़ता है। कानों को धीरे से मसलने पर जैसे हल्की लालिमा आ जाती है, उसी प्रकार लज्जा जब नारी के अंग–प्रत्यंग को मसल देती है तो उसके रूप में भी लालिमा आ जाती है।

लज्जा का उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक चित्र कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि तथा उसकी सौंदर्यप्रियता के द्योतक हैं।

नारी जब आत्म–समर्पण की भावना से विह्वल हो पुरूष पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है उस समय का मोहक रूप निम्नलिखित कविता में देखिएः–

''मै जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ,

भुजलता फँसा कर नर तरू से झूले–सी झोंके खाती हूँ।

नारी अपने कोमल बाहु मृणाल पुरूष के गले में फँसा उसे जब बाँधने का उपक्रम करती है उस समय वह स्वयं झूले सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है। जैसे वृक्ष को बाँधने वाली लता स्वयं उसमें आबद्ध हो जाती है। व्यापार–साम्य पर आधारित लज्जा का यह अनुपम चित्र कला और भाव के उचित सम्मिश्रण से देदीप्यमान हो उठा है।

'कामायनी' प्रसाद की अक्षय कीर्ति का आधार–स्तम्भ है। निःसंदेह यह आधुनिक हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें प्रसाद की काव्य–कला का चरम विकास है। इसमें मनु की वह प्राचीन कथा है जिसमें खंड–प्रलय के बाद मनु और श्रद्धा के संयोग से मानव–सभ्यता का प्रवर्तन होता है। कथा–तत्त्व विरल है किन्तु काव्य का फलक विस्तीर्ण। मनु, श्रद्धा और इड़ा–इन तीन प्रमुख पात्रों के माध्यम से कवि ने मानवीय अनुभूतियों एवं आकांक्षाओं की अनेकरूपता का चित्रण किया है। विशिष्टता यह कि 'चिन्ता', 'आशा', 'वासना', 'ईर्ष्या', 'श्रद्धा', 'लज्जा' आदि मानवीय वृत्तियों को पात्रों के रूप में साकार कर कवि ने उनकी विविध भंगिमाओं का अंकन किया है। पात्रों की सांकेतिक व्यंजनाएँ इतनी अर्थपूर्ण हैं कि इतिहास में रूपक का अद्भुत मिश्रण हो गया है। संश्लिष्ट काव्य–विधान के बारे में वाजपेयी जी की दृष्टि कितनी साफ थी, उसके प्रमाणस्वरूप यह उद्धरण भी दिया है –''बड़े जीवन–चक्रों को हाथ में लेना; पेचीदा भावधाराओं और सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप उठी हुई जटिल समस्याओं का निरूपण करना; व्यक्ति, देश और जाति के जीवन के वृहद् छाया–आलोकों को उद्घाटित करना; सारांश यह कि जीवन के गहरे और बहुमुखी घात–प्रतिघातों और विस्तृत जीवन–दशाओं में पद–पद पर आने वाले उद्वेलनों को चित्रित करना, उन्हें संभालना और अपनी कला में उनको सजीव करना।''[11]

वर्णन की भाषा की अनगढ़ता पर ध्यान न देकर केवल सुंदर बिम्बों के आधार पर, कामायनी की प्रशंसा करना बहुत–कुछ वैसा ही है जैसे आचार्य शुक्ल का यह कथन की ''यदि हम इस विशद काव्य की अंतर्योजना पर ध्यान न दें, समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव न ढूँढ़ें, श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा इत्यादि को अलग–अलग लें तो हमारे सामने बड़ी ही रमणीय कल्पना, अभिव्यंजना की अत्यंत मनोरम पद्धति आती है।

निष्कर्ष :–

प्रसादजी की 'कामायनी' में भावचित्रों की बहुलता है। इस लघु आलेख में उन सब चित्रों को दिखाना न तो सम्भव ही है और न अभीष्ट ही। अकेली 'कामायनी' में चिन्ता सर्ग में चिन्ता के अतिरिक्त तज्जन्य अनुभावों–विस्मृति, वैवर्ण्य, जड़ता आदि के भी भावपूर्ण चित्र हैं। आशा सर्ग में विश्वास, माधुर्य, अनुराग, आकांक्षा आदि के अनेक चित्र भरे पड़े हैं। श्रद्धा सर्ग में दया, ममता, माधुर्य, उत्साह, आत्मसमर्पण के अनेकानेक पूर्ण चित्र अथवा खंडचित्र उभरे हुए हैं। इसी प्रकार काम, वासना, लज्जा, कर्म, इड़ा, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य तथा आनन्द आदि सर्गों में मानव मन की विभिन्न वृत्तियों का उद्‌घाटन भावपूर्ण चित्रों के माध्यम से हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0–42
2. नन्द दुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ0–138
3. डॉ0 प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य, पृ0–385
4. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0–97.
5. विश्वम्भर मानव, कामायनी की टीका, पृ0–159
6. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0–97.
7. वही, पृ0–97.
8. वही, पृ0–98.
9. नन्द दुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ0–9.
10. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0–88.
11. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, 1995, पृ0–76